राजेंद्र सिंह

सतत विकास: प्रकृति में निहित ज्ञान

सतत विकास आसान नहीं है, लेकिन यह हमारी अपरिहार्य जिम्मेदारी है। बेहतर योजना, मज़बूत नीतियों और उनके प्रभावी क्रियान्वयन के माध्यम से इसे प्राप्त किया जा सकता है। सरकारें अब पर्यावरणीय समस्याओं को संकीर्ण और अल्पकालिक दृष्टिकोण से नहीं देख सकतीं। सार्वजनिक और निजी दोनों प्रकार के निर्णयों में सतत विकास को शामिल करना केवल वांछनीय नहीं, बल्कि अत्यंत आवश्यक है।

आज पूरी दुनिया में जलवायु परिवर्तन के समाधान पर चर्चा हो रही है, लेकिन केवल चर्चाओं से इसका प्रभावी समाधान नहीं निकला है। इसके विपरीत, जब हमने पृथ्वी पर जल संरक्षण किया, तब हरियाली बढ़ी और इस हरियाली ने वातावरण से कार्बन को अवशोषित करके मिट्टी में संग्रहित किया, जिससे वनस्पति का विकास और अधिक तीव्र गति से हुआ। इसलिए जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का प्रभावी सामना मुख्यतः अनुकूलन के माध्यम से किया जा सकता है। जब हमने अपना जीवन प्रकृति के साथ मिलकर कार्य करने और उसकी प्रक्रियाओं को सहयोग देने में लगाया, तब भूमि में जल वापस लौटा, हरियाली बढ़ी और लोगों के जीवन में अधिक सुख, संतोष तथा शांति आई। लोगों ने प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर और ज्ञान पर आधारित जीवन-पद्धति के माध्यम से समस्याओं का समाधान करना शुरू किया। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन और शमन की प्रक्रिया मानव व्यवहार में परिवर्तन से जुड़ी हुई है। जब लोगों को जल, मिट्टी और हरियाली के साथ कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है, तो उनके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आता है। यही वास्तविक सतत विकास है।

भारतीय चिंतन में सतत विकास का आधार

सतत विकास की अवधारणा भारत की प्राचीन 'शुभ' परंपरा में निहित है, जिसका इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। 'सस्टेनेबिलिटी' शब्द को वैश्विक पहचान वर्ष 1992 में ब्राज़ील के रियो डी जनेरियो में आयोजित द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन (सेकंड अर्थ समिट) के दौरान मिली। भारत में यह विचार 'सनातन' और 'सतत विकास' जैसी अवधारणाओं से जुड़ा रहा है। पारंपरिक भारतीय चिंतन में 'शुभ' को 'लाभ' के साथ जोड़ा गया, ताकि मनुष्य लाभ की अंधी दौड़ में इतना लालची न हो जाए कि वह प्रकृति को ही नुकसान पहुंचा दे।

यहां प्रस्तुत किए गए विचार और अनुभव, दिसंबर 1991 में पेरिस में आयोजित दूसरे अर्थ समिट और 1992 में रियो डी जनेरियो में हुए अर्थ समिट की तैयारियों में स्वैच्छिक संगठनों के प्रतिनिधि के तौर पर सीधे शामिल होने पर आधारित हैं।

वेदों में पर्यावरणीय चेतना

भारत में सतत विकास की भावना इस विश्वास से संचालित होती है कि "प्रकृति हमें अपने पूर्वजों से विरासत में नहीं मिली है, बल्कि हमने इसे अपने बच्चों से उधार लिया है। इसकी रक्षा और संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है।" हम प्रकृति से जो कुछ भी लेते हैं, वह आने वाली पीढ़ियों के प्रति हमारा ऋण है। जब तक हम जीवित हैं, हमें अपने प्रयासों द्वारा उस ऋण को चुकाने का प्रयास करना चाहिए। वेदों में पृथ्वी के लिए एक प्रार्थना मिलती है, जिसमें कहा गया है कि जो व्यक्ति स्वार्थवश पृथ्वी को नुकसान पहुंचाने का प्रयास करे, पृथ्वी उसे सजा दे:

"हे पृथ्वी! जो लोग तुमसे घृणा करते हैं, तुम पर आक्रमण करते हैं या अपने स्वार्थ के लिए तुम्हें हानि पहुंचाना चाहते हैं, उनका नाश करो।" (अथर्ववेद, कांड 12, सूक्त 1, मंत्र 14)

इसी प्रकार भारतीय परंपरा में प्रत्येक सुबह पृथ्वी पर पैर रखने से पहले उससे क्षमा याचना की जाती है।

लेखक राजस्थान के प्रसिद्ध पर्यावरणविद् और जल संरक्षणवादी हैं, जिन्हें व्यापक रूप से 'भारत के जलपुरुष' के नाम से जाना जाता है। वे 'तरुण भारत संघ (टीबीएस)' का नेतृत्व करते हैं। ईमेल: rajendra.singh@anu.edu.in

"हे देवी पृथ्वी! जो समुद्रों से आच्छादित हैं, पर्वतों से सुशोभित हैं और भगवान विष्णु की अर्धांगिनी हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूं। कृपया मुझे मेरे पैरों के स्पर्श के लिए क्षमा करें।"

भारतीय ज्ञान परंपरा में सतत विकास का अर्थ 'सनातन' है अर्थात् वह जो कभी समाप्त नहीं होता और निरंतर स्वयं को पुनर्जीवित करता रहता है। वास्तविक विकास वही है जिसमें निरंतर सृजन हो, परंतु विनाश, क्षरण या विस्थापन न हो। अर्थशास्त्री, उद्योगपति और पर्यावरणविद् सभी इस मार्ग पर एकजुट हो सकते हैं। जब समाज प्रकृति के साथ सामंजस्य में जीवन जीता है, तब पर्यावरणीय क्षरण नहीं होता। लेकिन जब मानव का लालच प्रकृति की पुनरुत्पादक क्षमता को बाधित करता है, तब कोई भी व्यवस्था टिकाऊ नहीं रह पाती। इसलिए मानव विकास ऐसा होना चाहिए जो प्रकृति की पुनर्योजी शक्ति को सुरक्षित रखे और उसे मज़बूत बनाए। ऐसा विकास स्थिरता और स्थायित्व प्रदान करता है और यही सतत विकास का वास्तविक अर्थ है।

'डिज़ाइनिंग विद नेचर' की अवधारणा

सतत विकास को समझने और उसकी स्पष्ट परिभाषा निर्धारित करने के लिए वैज्ञानिकों और इंजीनियर्स (अभियंताओं) को प्रकृति की पुनर्योजी प्रक्रियाओं को प्रौद्योगिकी और डिज़ाइन का अभिन्न हिस्सा बनाना होगा। चाहे नवीनीकरण मानव नवाचार के माध्यम से हो या स्वयं प्रकृति की प्रक्रियाओं द्वारा, दोनों ही स्थिरता को सुदृढ़ करते हैं। मानव निर्मित व्यवस्थाएं ऐसी नहीं होनी चाहिए जो प्रकृति की पुनर्जीवित होने की क्षमता को नुकसान पहुंचाएं। इसी सिद्धांत को 'तरुण भारत संघ' ने अपनाया है और यही पुनर्योजी तथा सतत विकास का आधार है। अहिंसक विकास ही वास्तव में सतत विकास है।

औद्योगिक विकास तभी सतत माना जा सकता है जब वह प्रकृति की पुनरुत्पादक क्षमता को सशक्त बनाए। उत्पादन की प्रक्रियाएं ऐसी होनी चाहिए जो पर्यावरण को क्षति न पहुंचाएं। यदि किसी कारण से कुछ हानि होती भी है, तो उसके साथ-साथ पुनर्योजित तरीके से पारिस्थितिक संतुलन की पुनर्स्थापना के प्रयास भी किए जाने चाहिए। यह सिद्धांत संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन (यूएनसीईडी) द्वारा स्वीकृत सतत विकास की वैश्विक अवधारणा के अनुरूप है।

सतत विकास का अर्थ है कि मानव और प्रकृति से जुड़ी सभी गतिविधियों में दीर्घकालिक संतुलन और स्थायित्व का ध्यान रखा जाए। जो विकास स्थिरता और संतुलन को अनदेखा करता है, वह लंबे समय तक टिक नहीं सकता। आर्थिक वृद्धि और औद्योगिक उत्पादन को इस प्रकार संचालित किया जाना चाहिए कि पर्यावरण को हानि न पहुंचे। अत्यधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति समाज को 'शुभ' अर्थात् सततता के मूल सिद्धांत से दूर कर देती है। लालच सतत विकास को नष्ट करता है, जबकि नैतिक चिंतन उसे संरक्षित रखता है।

आज केवल भारत का औद्योगिक क्षेत्र ही नहीं, बल्कि कृषि, मौसम और संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र भी अस्थिरता का सामना कर रहे हैं। सतत विकास के लिए आवश्यक है कि प्रकृति की पुनर्योजी प्रक्रियाएं कभी बाधित न हों और पुनर्जनन को प्रोत्साहित करने वाले सिद्धांतों का निरंतर पालन किया जाए। 21वीं सदी की शुरुआत में विश्व की जनसंख्या छह अरब तक पहुंच गई थी और अनुमान है कि अगले 50 वर्षों में यह 10 से ग्यारह अरब के बीच स्थिर हो सकती है। इस बढ़ती आबादी के साथ अनेक गंभीर चुनौतियां भी सामने हैं, जिनमें स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता, खाद्यान्न उत्पादन के लिए उपजाऊ भूमि तथा गरीबी प्रमुख हैं। आज भी विश्व की लगभग एक-चौथाई आबादी प्रतिदिन एक अमेरिकी डॉलर से भी कम आय पर जीवनयापन करती है।

सतत विकास की महत्त्वपूर्ण प्राथमिकताओं में पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु दर में दो-तिहाई कमी लाना तथा युवा माताओं की मृत्यु दर को 75 प्रतिशत तक कम करना शामिल है। ऊर्जा की बढ़ती खपत भी एक बड़ी चुनौती है। ऊर्जा के सभी स्रोतों की आवश्यकता लगातार बढ़ रही है। आने वाले दशकों में विश्वसनीय, सतत और पर्यावरण-अनुकूल ऊर्जा स्रोतों की उपलब्धता बढ़ाना तथा ऊर्जा दक्षता में सुधार करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण होगा।

वनों की कटाई भी गंभीर चिंता का विषय है। कृषि विस्तार के कारण विश्वभर में वन क्षेत्र लगातार घट रहे हैं। इसलिए वनों का पुनर्स्थापन और बेहतर प्रबंधन आने वाले समय में अत्यधिक आवश्यक होगा।

उपयुक्त प्रौद्योगिकी ऐसी होनी चाहिए जो स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप हो, पर्यावरण के अनुकूल हो, संसाधनों का कुशल उपयोग करे तथा सांस्कृतिक रूप से स्वीकार्य हो। जहां तक संभव हो, उसे स्थानीय संसाधनों और स्थानीय श्रम पर आधारित होना चाहिए। अनेक बार स्वदेशी तकनीकें अधिक उपयोगी, किफायती और टिकाऊ सिद्ध होती हैं। प्रकृति को ही डिज़ाइन का आदर्श मानना चाहिए। इस दृष्टिकोण को अक्सर 'प्रकृति के साथ डिज़ाइन' कहा जाता है।

संसाधनों की सीमाएं और विकास

प्रौद्योगिकी का उद्देश्य कम संसाधनों का उपयोग करना और न्यूनतम अपशिष्ट उत्पन्न करना होना चाहिए। रिड्यूस (कम करना), रीयूज़ (पुनः उपयोग) और रीसायकल (पुनरावृत्ति करना) के सिद्धांत संसाधनों की खपत कम करने, कचरे को घटाने और प्रदूषण कम करने में सहायक हैं। इनसे प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव घटता है और प्रकृति की पुनर्जनन प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

पर्यावरण शिक्षा को शिक्षा व्यवस्था के केंद्र में स्थान मिलना चाहिए। यदि विद्यालय स्तर से ही बच्चों को पर्यावरण की शिक्षा दी जाए, तो उनके भीतर पृथ्वी के साथ गहरा संबंध विकसित होगा। समय के साथ 'पृथ्वी की तरह सोचने' की भावना हमारे मूल्यों, निर्णयों और जीवनशैली का हिस्सा बन सकती है, जिससे समाज अधिक टिकाऊ बनेगा।

हर पारिस्थितिक तंत्र की एक वहन क्षमता होती है, अर्थात् वह लंबे समय तक कितने जीवों का पोषण कर सकता है। मनुष्यों के संदर्भ में यह अवधारणा अधिक जटिल है, क्योंकि जीवन की गुणवत्ता भोजन के परे और भी कई कारकों पर निर्भर होती है। सतत विकास का आधार इस पारिस्थितिक वहन क्षमता का सम्मान करना है। जब प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन किया जाता है और यह क्षमता पार हो जाती है, तब पर्यावरणीय क्षरण आरंभ हो जाता है, जो अंततः अपरिवर्तनीय भी हो सकता है।

इसलिए सतत विकास प्राप्त करने के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि उपभोग की मात्रा कभी भी प्रकृति की पुनर्जनन क्षमता से अधिक न हो तथा पर्यावरणीय परिवर्तन उन सीमाओं के भीतर रहें जिन्हें कोई पारिस्थितिक तंत्र सहन कर सकता है। विकास का उद्देश्य केवल विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों को लाभ पहुंचाना नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक आयामों में जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना होना चाहिए।

जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित और स्थिर करना भी सतत विकास के लिए आवश्यक है। भारत सरकार ने जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का सामना करने के लिए 30 जून, 2008 को राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना जारी की। इस योजना में जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन तथा भारत के विकास पथ की पारिस्थितिकीय स्थिरता पर विशेष बल दिया गया है। आज के भारत में जल और जलवायु परिवर्तन एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं; जल संकट वास्तव में जलवायु संकट का ही एक रूप है।

राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन कार्य योजना (एनएपीसीसी) इस बात पर बल देती है कि जीवन स्तर में सुधार और जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न जोखिमों को कम करने के लिए उच्च आर्थिक विकास दर बनाए रखना आवश्यक है। यह योजना ऐसे उपायों की पहचान करती है जो सतत विकास को बढ़ावा देने के साथ-साथ जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का भी समाधान करते हैं। यह आठ राष्ट्रीय मिशनों पर आधारित एक दीर्घकालिक और बहुआयामी रणनीति है। वर्ष 2024 तक भारत कृषि और उद्योग क्षेत्रों में जलवायु अनुकूलन तथा शमन से जुड़े कई महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों को लागू करना शुरू कर चुका था।

दीर्घकालिक ऊर्जा सुरक्षा की आवश्यकता

दीर्घकालिक ऊर्जा और पारिस्थितिकीय सुरक्षा भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। विश्वभर में जीवाश्म ईंधनों के भंडार लगातार घट रहे हैं और तेल, गैस तथा कोयले तक पहुंच सीमित होती जा रही है। इसी कारण नवीकरणीय ऊर्जा का महत्त्व तेज़ी से बढ़ा है। भारत ने विशेष रूप से सौर और पवन ऊर्जा पर व्यापक ध्यान केंद्रित किया है। देश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध सौर विकिरण को देखते हुए सौर ऊर्जा दीर्घकालिक समाधान के रूप में अत्यंत आशाजनक है।

राष्ट्रीय मिशन, जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन और उसके प्रभावों को कम करने के लिए निजी क्षेत्र में तकनीकी नवाचार को भी प्रोत्साहित करते हैं। इन मिशनों के अतिरिक्त सरकार क्षेत्रीय विकास कार्यक्रमों, स्वच्छ प्रौद्योगिकी पहल, स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए अनुदानों, हरित वास्तुकला, सतत खनन ढांचों तथा अन्य सततता-अनुकूल प्रयासों को भी समर्थन प्रदान करती है।

सतत विकास अंततः एक दृष्टि है, सोचने और जीवन जीने का तरीका है जिसका उद्देश्य आने वाली पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण की रक्षा करना है। इसे केवल सरकारी नीतियों के माध्यम से हासिल नहीं किया जा सकता। समाज को अपने दैनिक जीवन के छोटे-छोटे निर्णयों से लेकर बड़े राजनीतिक और आर्थिक निर्णयों तक, हर स्तर पर सतत विकास को मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में अपनाना होगा।

पर्यावरणीय क्षरण का सबसे गंभीर प्रभाव आने वाली पीढ़ियों पर पड़ता है। आज लिए जा रहे निर्णयों में उनकी कोई आवाज़ न होने के बावजूद, उन्हें भविष्य में निम्न स्तर की जीवन-गुणवत्ता विरासत में मिल सकती है। इसलिए योजनाएं बनाते समय और नीतियां निर्धारित करते समय उनके हितों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। सतत विकास तभी सफल हो सकता है जब नागरिकों और विभिन्न हितधारकों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाए।

सतत विकास : मानवता का साझा संकल्प

अंततः सततता तभी वास्तविकता बनेगी जब हम सभी मिलकर ऐसी दुनिया के निर्माण में योगदान देंगे, जहां आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण साथ-साथ आगे बढ़ें। सतत विकास सरल नहीं है, लेकिन यह हमारी अनिवार्य जिम्मेदारी है। बेहतर योजना, मज़बूत नीतियों और प्रभावी क्रियान्वयन के माध्यम से इसे प्राप्त किया जा सकता है। सरकारें अब पर्यावरणीय मुद्दों को संकीर्ण और अल्पकालिक दृष्टिकोण से नहीं देख सकतीं। सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों के निर्णयों में सतत विकास को शामिल करना न केवल वांछित है बल्कि अत्यंत आवश्यक है।

हमारे पूर्वजों ने हमें गंगा और यमुना के उपजाऊ क्षेत्रों की जीवन देने वाली कृषि परंपराएं विरासत में दी थीं। लेकिन हमारे जीवनकाल में कृषि और उद्योग दोनों ने धीरे-धीरे 'शुभ' के मार्ग को छोड़कर केवल 'लाभ' केंद्रित विकास का रास्ता अपनाना शुरू कर दिया। हमें पृथ्वी के प्रति सम्मान और प्रेम रखते हुए प्रकृति को फिर से संवारने के लिए खुद को समर्पित करना चाहिए।

15,000 जल संरचनाओं से 23 नदियों का पुनर्जीवन

पिछले 51 वर्षों से 'तरुण भारत संघ' ने समुदायों को संगठित किया है और 15,000 से अधिक जल संरक्षण संरचनाओं के निर्माण में सहयोग दिया है। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप 1,500 से अधिक गांव जल-सुरक्षित बने हैं। इसके साथ ही 23 नदियों का पुनर्जीवन संभव हुआ है। इनमें राजस्थान की अरवरी, रूपारेल, सरसा, महेश्वरा, साबी, तेवर, सैरनी, पार्वती, नौर्रा, भवानी और कोटवारी जैसी नदियां, महाराष्ट्र की अग्रणी और महाकाली नदियां तथा कर्नाटक की इचनहल्ला नदी शामिल हैं।

इस कार्य का प्रभाव लगभग 10,600 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में दिखाई देता है, जहां जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन और उसके प्रभावों को कम करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है। यह सामुदायिक भागीदारी पर आधारित पारिस्थितिकीय पुनर्स्थापन का विश्व के सबसे असाधारण उदाहरणों में से एक है। 21वीं सदी में भी हम सूखी धरती और नदियों में जल लौटाने के अपने प्रयास जारी रखे हुए हैं।

जब तक प्रकृति हमें उसकी सेवा करने का अवसर देती रहे, तब तक हमें सतत विकास को अपना मार्गदर्शक सिद्धांत बनाकर प्रकृति और आने वाली पीढ़ियों के लिए कार्य करते रहना चाहिए। तभी हमारी पृथ्वी वास्तव में सतत विकास का एक आदर्श केंद्र बन सकेगी। ❑